REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 11 | AUGUST - 2023

अज्ञेय के काव्य सौंदर्य में नारी एवं प्रेम का अध्ययन

सर्वेश कुमार पाण्डेय[1] , डॉ. ओम प्रकाश द्विवेदी[2]
[1]शोधार्थी हिन्दी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
[2]सहायक प्राध्यापक हिन्दी, यमुना प्रसाद शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिरमौर, जिला रीवा (म.प्र.)

सारांश –

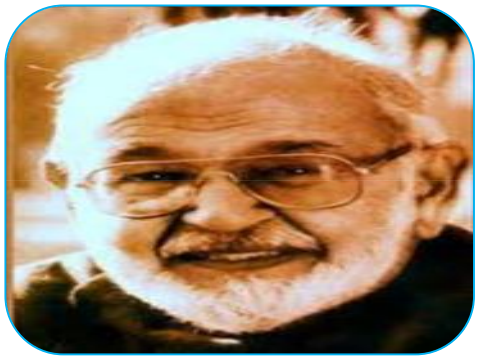

सौंदर्य की व्याप्ति प्रकृति के कण–कण में है। मनुष्य के व्यवहार में है, उनके कर्मों में है, वाणी में है, काव्य में है, साहित्य में है, जीवन में है, यहाँ तक कि मानव के अवचेतन मस्तिष्क में भी सुंदरता के बीज सुप्त हैं। जैसे ही उन्हें सिंचन प्राप्त होता है वह प्रफुल्लित हो उठते हैं। सौंदर्य का सुंदरता के प्रति एक चुंबकीय आकर्षण होता है अर्थात् प्रकृति के सौंदर्य को वही व्यक्ति देख सकता है जिसके मन में सुंदरता निहित हो। काव्य सौंदर्य को वही जान सकता है, जिसके पास सहृदयत्व हो। नृत्य आदि की बारीकियों को वही समझ सकता है जिसमें कला के प्रति अनुराग हो।

मुख्य शब्द – सौंदर्य, काव्य, आकर्षण नारी एवं प्रेम।

प्रस्तावना –

संसार में नारी आदि शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित रही है। वह दया, प्रेम, करुणा, ममता, वत्सलता की प्रतिमूर्ति है। उसका महत्व सृष्टि के आदि से वर्तमान तक व्याप्त है और आगे भी रहेगा।

नारी और प्रेम का घनिष्ठ संबंध है। नारी में व्याप्त प्रेममयी भावनाएँ, विभिन्न सामाजिक संबंधों को जन्म देती है। नारी में व्याप्त प्रेम की भावना ही माता–पिता के संबंध को, माता और शिशु के संबंध को, भाई–बहन के संबंध को, पति–पत्नी के संबंध को जीवंत रखती हैं। अतः नारी और प्रेम दोनों में से किसी के भी अभाव में सृष्टि की रचना संभव नहीं।

हिन्दी साहित्य जगत में भी नारी को विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। नारी के प्रेममयी स्वरूप को प्रत्येक कवि ने अपने काव्य में उतारा है। तुलसी ने सीता को पतिव्रता नारी के रूप में प्रदर्शित किया है तो सूरदास ने राधा के प्रेमादर्श को स्थापित किया है। वहीं यदि रीतिकाल में देखें तो नारी पुरुष के लिए भोगविलास का अवलंबन बन गई थी। लेकिन आधुनिक काल में पुनः नारी के रूप में परिवर्तन आया और उसे एक गौरवमयी स्वरूप के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। छायावादी युग में नारी कोमलकांत प्रेम–सौंदर्य से युक्त प्रकृति के नाना उपादानों के साथ कवियों द्वारा चित्रित की गयी। अतः आदिकाल हो या भक्तिकाल, आधुनिक काल हो या छायावादी काल या नई कविता प्रत्येक समय में नारी के सौंदर्य, प्रेम, ममता, करुणा ने कवि की लेखनी को सदैव अपने में बाँधकर रखा है।

विश्लेषण –

नारी रूप सौंदर्य सदा से आकर्षण का केन्द्र है और पुरुष का नारी सौंदर्य के प्रति सदैव ही मुग्ध रहा है। उसके चितवन के समक्ष बली से बली राजा भी असहाय रहे हैं। सीता जी के अपूर्व सौंदर्य को देखकर तीनों लोकों के स्वामी निःशब्द हो जाते हैं। महाकवि तुलसी इस दृश्य को वर्णित करते हुए कहते हैं–

"देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदयं सराहत बचनु न आवा।।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिश्व कह प्रगटि देखाई।।"[1]

अर्थात् सीताजी की अनुपम रूपश्री को देखकर श्रीराम इस प्रकार मुग्ध होते हैं कि उनके सुख से सीता जी के सौंदर्य वैभव का वर्णन करने के लिए शब्द ही नहीं निकल पाते और ऐसा लगता है जैसे ब्रह्मा जी ने अपनी समस्त दिव्यता को सीता के रूप में प्रकट करके संसार के समक्ष रख दिया हो।

ठीक उसी प्रकार महाकाव्य कामायनी के रचयिता प्रसाद भी श्रद्धा को रूप वैभव को देखकर मनमोहित हुए, मनु की स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं–

"एक झटका सा लगा सहर्ष, निरखने लगे जुटे–से, कौन,
गा रहा यह सुंदर संगीत? कुतूहल रह न सका फिर मौन।
और देखा वह सुंदर दृश्य, नयन का इंद्रजाल अभिराम,
कुसुम–वैभव में लता समान, चंद्रिका से लिपटा घनश्याम।।"[2]

ऐसा ही भावसाम्य अज्ञेय की 'विश्वप्रिया' में देखने को मलता है जहाँ पर कवि अपनी प्रेमिका के सौंदर्य को देखकर, उसके गुणों पर मोहित होकर, हतप्रभ सा हो जाता है और स्वयं से ही प्रश्न करता है कि तुममें ऐसा क्या है, जो तुम्हारे आगे मैं हाथ जोड़कर खड़ा रह जाता हूँ–

"तेरी आँखों में क्या मद है जिसको पीने आता हूँ
जिसको पीकर प्रणय–यश में तेरे मैं बँध जाता हूँ?
तेरे उर में क्या सुवर्ण है, जिसको लेने जाता हूँ
जिसको लेते हृदय द्वार की राह भूल मैं जाता हूँ
तेरी काया में क्या गुण है, जिसको लिखने आता हूँ
जिसको लिख कर तेरे आगे हाथ जोड़ रह जाता हूँ।"[3]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने नारी सौन्दर्य और प्रेम की उस चरमसीमा को अभिव्यक्त किया है; जिसके आगे वह भावनाओं के पास में बँध जाता है और चाह कर भी निकल नहीं पाता। वह स्वयं भूल जाता है कि किन गुणों का पान करने वह आया है और क्यों मदमस्त होकर उसमें स्वयं को भूल गया है। निश्चित ही कवि का मनोभाव नारी के उस प्रेम, सौंदर्य और सहजता के आगे नतमस्तक है जो उसके विशुद्ध लावण्य का प्रतीक है।

उसकी प्रेम भावनाएं इतनी धनी है कि उसे चहुँ ओर वही एकात्मक धुन सुनाई देती है–

"कहाँ किसी ने गाया
मैं तेरा हूँ – तू मेरा है
कैसा यह प्रेम घनेरा है!
मेरा मन भर आया
प्रियतम, कभी तुम्हारे मुख से
यह ही शब्द सुने थे मैंने
अनजान में, मन के धागे

से ये विध गुने थे, मैंने
आज चीर परदा अतीत का
यही वाक्य तारे–सा चमका
मैं तेरा हूँ – तू मेरा है
कैसा यह प्रेम घनेरा है।"[4]

यही नहीं अज्ञेय का काव्य नारी की रूपश्री के चित्रण से अछूता नहीं रहा है, उन्होंने अपनी प्रारंभिक कविताओं में स्त्री की सुंदरता का अत्यधिक वर्णन किया है। उनकी कविता 'नखशिख' में नारी के आंगिक रूप समृद्धि की संचेतना प्रकट हुई है–

"तुम्हारी देह
मुझको कनक–चंपे की कली है
दूर ही से स्मरण में भी गँध देती है।
(रूप स्पर्शातीत वह जिस की लुनाई
मुहासे–सी चेतना को मोह ले)
तुम्हारे नैन, पहले भोर की दो ओस की बूँदे हैं
अछूती, ज्योतिमय,
भीतर द्रवित।
[मानो विधाता के हृदय में
जग गई हो भाप करुणा की अपरिमत]
तुम्हारे ओठ–
पर दहकते दाड़िम–पुहुप को
मूक ताकता रह सकूँ मैं
सह सकूँ मैं
ताप ऊष्मा का मुझे जो लील लेती है।"[5]

प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि ने नारी सौंदर्य के लिए नवीन उपमानों का प्रयोग किया है। उन्होंने देह को कनक चंपे की कली कहा है, तो आँखों को भोर की दो ओस बूँद और होठों को दहकते दाड़िम पुहुप जैसा बताया है। कवि अज्ञेय अपनी कविता में हमेशा नवीन उपमान का ही प्रयोग करते थे। उनके इस काव्य कौशल को देखकर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी कहते हैं – ''यहाँ कवि ने देह स्थित रूप का वर्णन किया है, देह का समग्र प्रभाव चंपे की कली के समान है तथा उसके अलग–अलग अंग अपना विशिष्ट प्रभाव रखते हैं।''[6]

अज्ञेय की प्रेम संबंधी अवधारणा भी मुक्ति की भारतीय अवधारणा पर निहित है। उनकी प्रेम संबंधी कविताएं अपने प्रिय को किसी मोह–बंधन या राग में नहीं बाँधती, बल्कि वे एक प्रकार की स्वतंत्रता प्रदान करती है। कवि ने प्रेम को शाश्वत मूल्य माना है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं – "सागर–मुद्रा में प्रकृति और प्रेम का जो उच्छलित रूप है वह मानवीय जिजीविषा का ही प्रतिरूप है।"[7] नारी रूप समृद्धि को लेकर उसे नवीन उपमाओं से बाँधते हुए आगे अज्ञेय कहते हैं–

"हरी बिछली घास।
दोलती कलगी छरहरी बाजरे की।
अगर मैं ललती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार न्हाईं–कूईं
टटली कले चंपे की
तो नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला कि सुना है

या मेरा प्यार मैला है।"[8]

प्रस्तुत पंक्तियों में भी अज्ञेय ने नवीन उपमानों का प्रयोग किया है, उन्होंने नायिका के सौंदर्य को हरि बिछली घास, डोलती कलगी छरहरी बाजरे की जैसे नितांत नवीन उपमानों के द्वारा नवाजा है।

अज्ञेय ने अपनी कविताओं में नारी और पुरुष के प्रेममई चित्रों को भी अंकित किया है, अपनी कविता 'चिंता' में वह नारी के प्रति पुरुष का आकर्षण अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं–

"आओ, एक खेल खेलें।
मैं आदिम पुरुष बनूँगा
तुम पहली मानव–वधुका।
पहला पातक अपना ही।
हो परिणय, यौवन–मधु का।''[9]

नारी और पुरुष एक दूसरे के प्रति सौंदर्य आकर्षक से बंधे होते हैं, उनका एक दूसरे के प्रति सानिध्य प्रेम के द्वारा हि संभव होता है, जो उसकी अभिलाषाओं के द्वारा अभिव्यक्त होता है। कवि समाज के बंधनों से मुक्त रहकर अपने प्रेम की अलग ही अभिव्यक्ति करता है–

"हरी घास की पत्ती–पत्ती मिट जावे लिपट झाडियों के पैरों में
और झाड़ियाँ भी घुल जावें क्षिति–रेखा के मसृण ध्वांत में,
केवल बना रहे विस्तार हमारा बोध
मुक्ति का,
सीमाहीन खुलेपन का ही।''[10]

कवि के विचार आधुनिक ओजस्विता से परिपूर्ण है। वह मुक्त गगन में विचरण करने वाले हैं। नवीन उपमानों को साथ में लेकर चलने वाले हैं। उनके विचार हर प्रकार के रीति–रिवाज से मुक्त हैं। उनके हृदय में जो प्रेम दृष्टि है, वह उच्च दृष्टिकोण को समाहित किए हुए हैं। उनकी रचनाओं में शारीरिक सौंदर्य, रुप सज्जा, प्रणय निवेदन आदि आधुनिकता के साथ अभिव्यक्त हुआ है–

''खग–युगल! करो सम्पन्न प्रणय,
क्षण जीवन में ही तन्मय
हो अखिल अवनि ही निभृत निलय।
हाय तुम्हारी नैसर्गिकता! मानव नियम निराला है
वह तो अपने ही से अपना प्रणय छिपाने वाला है।"[11]

अज्ञेय की कविताओं में जहाँ नारी की कोमलता छुपी हुई है, वहीं पुरुष का पुरुषत्व भी देखने को मिलता है। पुरुष स्त्री में केवल सुख समृद्धि को ही नहीं देखता। वह नारी के मन का पठन नहीं करता बल्कि उसमें अपने स्वरुप का भी दर्प निहित रहता है। उसके अहम को चोट भी लगती है, अपने पुरुषत्व का डंका पीटते हुए वह कहता है–

"तुम हँसो कह दो अब उत्संग वर्जित है–
छोड़ दूँ भला मैं जो अभीसिप्त है?
कोसवत् सिमटी रहे यह चाहती नारी
खोल देने, लूटने का पुरुष अधिकारी!"

× × ×

शक्ति का सहवास खोकर पुरुष मिट्टी है
पूछता है पुरुष पर, वह शक्ति किस की है?
शक्ति के बिन व्यर्थ मेरा दृप्त जीवन–यान
क्यों न उसको बाँधने में तब लगूँ तन प्राण?
"मत हँसो, नारी, मुझे अपना वशीकृत जान–
तोड़ दूगाँ मैं तुम्हारा आज यह अभिमान!''[12]

अज्ञेय के काव्य में नारी के प्रति समान अधिकार की भावना भी निहित है, उन्होंने पुरुष और नारी में समानता की दृष्टि को रखकर अपने भावों की अभिव्यक्ति की है, भले ही नारी कुछ भी हो; लेकिन उसके अन्तर्मन से संपृक्त होने के कारण समान अधिकार और सम्मान का भाव रखती हैं–

"तर्क सुझाता घृणा करूँ, पर यही भाव रखता है घेरे
तुम इस नयी सृष्टा क्रूर–क्रूर पर प्रणयी मेरे"[13]

अज्ञेय की दृष्टि आधुनिक है। वे नर–नारी के संबंध को छायावादियों के समान कल्पना लोक में स्थापित नहीं करते। इस संबंध में अनेक मिश्र का कथन है कि– "नारी के प्रति कवि की यह अथार्थ दृष्टि उसे छायावादी कवियों से बिलकुल अलग करती है। छायावादी कवि के लिए नारी या तो निवेचन की विषय थीं या कोई अतिरिक्त रूप से कल्पित रागात्मक प्रतिमा। उसे कोई श्रद्धा नाम दे या अंतः सलिता। पर कवि अज्ञेय के लिए नारी केवल वही है, जो एक नर–नारी के विषय में सोचता है। कोई आग्रह जो रहस्य या दर्शन की ओर ले जाए, अज्ञेय का, नारी के विषय में नहीं है।"[14] अतः अज्ञेय का नारी प्रेम अलौकिक नहीं बल्कि लौकिक है।

अज्ञेय मानवीय काम भावनाओं को मनोवैज्ञानिकता के आधार पर देखते हैं और उसे लैकिक धरातल पर रखते हुए कहते हैं कि–

"मुझे सब कुछ याद है।
मैं उन सबों को भी नहीं भूला।
तुम्हारी देह पर जो खेलती हैं
अनमनी मेरी उंगलियाँ और जिनका खेलना
सच है मुझे जो भुला देता है,
सभी मेरी इंद्रियों की चेतना उनमें जागी है।"[15]

कवि की भोगवादी दृष्टिकोण की छवि अन्य कविताओं में भी दिखाई देती है। लेकिन उनकी इस प्रणय याचना में सौंदर्य के प्रति आग्रह भी परिलक्षत होता है –

"मैंने तुम्हें देखा असंख्य बारः
मेरी इन आँखों में बसी हुई है
छाया उस अनवद्य रूप की
मेरे नासा पुटों में तुम्हारी गँध
मेरी स्वयं उससे सुवासित हूँ।
मेरी मुट्ठियों में भरी हुई तुम
मेरी उंगलियों बीच छनकर बही हो
कण प्रतिकण आप्त, स्पृष्ट, भुक्त,
मैंने तुम्हें चूमा है।"[16]

कवि अज्ञेय की नारी भावना में प्रेम की वेदना भी दिखाई देती है। वह केवल मांसल प्रेम के ही अभिलाषी नहीं हैं, वरन् प्रेम की विरह, अभिव्यंजना, पीड़ा, वेदना, टीस, उनकी कविताओं में बोलती हुई, गुंजायमान होती हुई परिलक्षित होती है। उनकी प्रिया उनके जीवन का प्रकाश है–

"चेतना की नदी
बहती जाए तेरी ओर मौन तेरे ध्यान में
मैं रहूँ विभोर
अलग हूँ, पर विरह की धमनी
तड़पती लिए स्पंदित स्नेह
और मेरे प्यार में ओ हृदय के आलोक मेरे
वेदना की ओर।"[17]

अज्ञेय की कविताओं में वह एक प्रेमी के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं, उनका हृदय प्रेम से परीपूरित है। उनकी प्रेमिका के प्रत्येक भाव में सौंदर्य की अनुभूति होती है, जिसके सपनों का एक अंश मात्र बन जाने में वह अपने जीवन को सार्थक मानते हैं–

"तुम्हारी पलकों का कंपना
तनिक–सा चमक खुलना, फिर झंपना। तुम्हारी पलकों का कंपना
मानो दिखा तुम्हें लजीली किसी कली के
खिलने का सपना।
तुम्हारी पलकों का कंपना, सपने की एक किरण मुझको दो ना,
है मेरा इष्ट तुम्हारे उस अपने का कण होना।
और सब समय पराया है
बस उतना क्षण अपना है।"[18]

अज्ञेय ने अपने काव्य में प्राणयानुभूति की एक नई शैली को जन्म दिया है। जो उनके काव्य की विशेषता है। दूसरा सप्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि – "मनुष्य के मूल रागात्मक संबंध नहीं बदलते, वे तो प्रारंभ से ही ज्यों के त्यों बने हुए हैं। परंतु रागात्मक संबंधों की प्रणालियाँ बदलती रहती है।"[19] अपनी इस बात को वह अपनी कविता में स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

"प्यार के तरीके तो और भी होते हैं,
पर मेरे सपने में मेरा हाथ चुपचाप
तुम्हारे हाथ को सहलाता रहा।"[20]

उनकी प्रेमाभिव्यक्ति में शालीनता है, संस्कार हैं, उदारता है, मानसिक गठन है, एक विशिष्ट छाप परिलक्षित होती है। उन्होंने प्रेम संबंधों को एक समग्र दृष्टि के द्वारा ग्रहण किया है।

"प्रियतम, यदि नितप्रति तेरा ही
स्नेहाग्रह – आतुर कर कम्पन
विस्मय से भर कर ही खोले
मेरे अलस निमीलित लोचन,
नितप्रति माथे पर तेरा ही
ओस बिंदुसा कोमल चुम्बन
मेरी शिरा–शिरा में जागृत

किया करे शोणित का स्पन्दन,
उस स्वप्निल सचेत निद्रा से
प्रियतम। मैं कब जागू
मैं अमरत्व भला कब माँगू।"[21]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने अपने हृदय की अनुभूतियों को बड़े ही सरल और सहज भाव से कहा है। किसी प्रकार का कोई छल कपट, घुमाव या आरोपण यहाँ पर नहीं दिखाई देता। लेकिन अज्ञेय की प्रेमाभिव्यक्ति का मांसल पक्ष धीरे–धीरे समाप्त सा होता गया है और एक धूप गंध जैसी वस्तु दिखाई देती है। एक पूजा भाव, उत्सर्ग, समर्पण की इच्छा उनकी अनुभूति का प्रमुख स्वर बन गया है। अपनी कविता चिंता में उन्होंने अनेक स्थानों पर ऐसा कहा है–

"गये दिनों में औरों से भी मैंने प्रणय किया है–
मीठा, कोमल, स्निग्ध और चिर–अस्थिर प्रेम दिया है।
आज किंतु प्रियतक! जागी प्राणों में अभिनव पीड़ा–
यह रस किसने इस जीवन में दो–दो बार पिया है?"

इसी प्रकार आगे भी कहते हैं–

"प्रिय, आओ इसकी सित फेनिल स्मित के नीचे
तप्त किन्तु कम्पन श्लथ हाथ मिलाकर
शोणित के प्रवाह में जीवन का शैथिल्य भुला कर
किसी अनिर्वच सुख से आँखे मीचे
हम खो जावे, वैयक्तिक पार्थक्य मिटा कर।"[22]

अज्ञेय के काव्य में प्रेम की स्थूलता के स्थान पर सरल सहज अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है, अपने काव्य संग्रह 'चिंता' में वह कहते हैं–

"आओ, इस अजस्र निर्झर के तट पर
प्रिय, क्षण भर हम नीरव
रह कर इसके स्वर में लय कर डालें
अपने प्राणों का यह अविरल रौरव!"[23]

प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि अपने प्राणों के स्वर को निर्झरणी के तट पर खड़े होकर उसकी लय में मिलाने के लिए आतुर हैं। वह जल की उस धारा के साथ अपने जीवन के शैथिल्य को भुलाकर किसी अनिर्वचनीय सुख में, आनंद में लिप्त हो जाना चाहता है।

कवि का प्रेम उद्दात्त भावनाओं से युक्त है। उसके प्रेम में सहजता, सरलता और ओजस्विता का वास है। वह अपनी प्रणय स्थिति को उद्घाटित करते हुए कहता है–

"क्षण भर हम न रहें
रह कर भी :
सुनें गूँज भीतर के सूने सन्नाटे में
किसी दूर सागर की लोल लहर की
जिसकी छाती की हम दोनों छोटी–सी सिहरन हैं–
जिसे सीपी सदा सुना करती है

क्षण भर लय हों
मैं भी, तुम भी,
और न सिमटें सोच कि हमने
अपने से भी बड़ा किसी भी और को क्यों माना?
क्षण भर अनायास
हम याद करें।''[24]

प्रेम भावनाओं को सृष्टि का उपमान देते हुए अज्ञेय कहते हैं–

"श्वास की हैं दो क्रियाएं
खींचना फिर छोड़ देना,
कब भला संभव हमें इस
अनुक्रम को तोड़ देना?
श्वास की उस संधि–सा है
इस जगत् में प्यार का पल"।।[25]

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अज्ञेय के काव्य में नारी एवं प्रेम की सुंदर अभिव्यंजना दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने नारी रूप समृद्धि को लेकर और उसकी प्रेम अभिव्यक्ति को साथ लेकर नए उपमानों के साथ, नए बिम्ब के साथ नई भावनाओं के साथ मुक्त रूप से स्वच्छंद होकर वर्णन किया है। उनकी नारी एवं प्रेम दृष्टि से कोर–कोर से यथार्थता का बोध कराने में सक्षम है। नारी उनके लिए पूज्य है, सखी तुल्य है। उसे अपने जीवन का स्वामी मानते हुए उन्होंने कहा है– "मैं तुम क्या? बस सखीसखा! तुम होओ जीवन के स्वामी, मुझसे पूजा पाओ।"[26]

संदर्भ –

[1] महाकवि तुलसीदास – रामचरितमानस
[2] जयशंकर प्रसाद – कामायनी
[3] अज्ञेय – चिंता, पृष्ठ 24
[4] अज्ञेय – चिंता, पृष्ठ 102
[5] अज्ञेय – बावरा अहेरी, पृष्ठ 34
[6] डॉ. राजेन्द्र प्रसाद – अज्ञेय कवि और काव्य, पृष्ठ 108
[7] सम्पादक हितेश कुमार सिंह – अज्ञेय होने का अर्थ : दृष्टि का विवेक, पृष्ठ 205
[8] अज्ञेय – सदानीरा, भाग 1, पृष्ठ 251
[9] अज्ञेय – चिंता, पृष्ठ 36–37
[10] अज्ञेय – सदानीरा, भाग 1, पृष्ठ 247
[11] अज्ञेय – सदानीरा, भाग 1, पृष्ठ 143
[12] अज्ञेय – चिंता, पृष्ठ 44–45
[13] अज्ञेय – चिंता, पृष्ठ 159–160
[14] विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – अज्ञेय, पृष्ठ 290
[15] अज्ञेय – सदानीरा, भाग 1, पृष्ठ 236
[16] अज्ञेय – बावरा अहेरी, पृष्ठ 37

[17] अज्ञेय – बावरा अहेरी, पृष्ठ 37
[18] अज्ञेय – कितनी नावों में कितनी बार, पृष्ठ 20
[19] अज्ञेय – दूसरा सप्तक, भूमिका
[20] संपादक कृष्णदत्त पालीवाल – अज्ञेय रचनावली, खंड 2, पृष्ठ 408
[21] अज्ञेय – चिंता, पृष्ठ 113
[22] अज्ञेय – चिंता, पृष्ठ 111
[23] अज्ञेय – चिंता, पृष्ठ 111
[24] अज्ञेय – हरी घास पर क्षणभर, पृष्ठ 247
[25] अज्ञेय – इत्यलम्, पृष्ठ 78
[26] अज्ञेय – चिंता, पृष्ठ 113